जैनतत्त्वमीमांसा : एक प्रामाणिक कृति

श्री माणिकचन्द्र जयवंतसा भिसीकर, बाहुबली

भारतीय संस्कृतिकी मूल भित्तिके रूपमें जैन संस्कृति जिन मौलिक तत्त्वोंपर सुस्थित है, वे तत्त्व स्वतन्त्र एवं वैशिष्ट्यपूर्ण हैं, इसमें सन्देह नहीं है। प्राचीन कालमें तथा वर्तमानमें भी जो दार्शनिक विचारवंत हुए हैं; वे आचार्य हों या दृष्टिसम्पन्न श्रावक हों, उन्होंने जैन संस्कृति एवं उसके तत्त्वज्ञानपर मौलिक प्रकाश डाला है। उसकी जो-जो विशेषताएँ आगम, तर्क तथा अनुभूतिके बलपर उन्होंने स्वयं अवगत कीं, उन्हें तत्त्वजिज्ञासु जनोंके सामने दिल खोलकर रखी हैं। उनका इस विषयका प्रामाणिक सूक्ष्म परिशीलन तथा सुव्यवस्थित विवेचन नई पीढ़ीके अभ्यासियोंके लिए बहुत उपर्युक्त एवं मननीय सिद्ध हुआ है।

ज्ञान तथा अनुभववृद्ध श्रद्धेय पण्डितवर फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्रीकी "जैनतत्त्वमीमांसा" यह एक ऐसी ही मौलिक एवं अनुपम कृति है, जो पण्डितप्रवर ये टोडरमलजीके सर्वतोभद्र "मोक्षमार्गप्रकाशक" के अनन्तर न केवल तत्त्वजिज्ञासुओंके लिए, अपितु जानकर विद्वानोंके लिए भी समीचीन दृष्टि प्रदान करनेवाली अतीव उपयुक्त तथा पुनः-पुन अभ्यासकी वस्तु बनी प्रतीत होती है। इस ग्रन्थमें आगम तथा अध्यात्मको सुन्दर समन्वय करते हुए जैन दर्शन सम्बन्धी अनेक महत्त्वपूर्ण विशेषताओंका सूक्ष्म विवेचन हुआ है, जिससे कई गुत्थियाँ सहज सुलझती हैं, अनेक भ्रान्त धारणाएँ जड़ से दूर होती हैं, और जैन तत्त्वका वास्तविक मर्म सुस्पष्ट होता है।

प्रत्येक विषयका विवेचन करते समय जगह-जगहपर पूर्वाचार्योंके तलस्पर्शी सन्तुलित चिन्तनका प्रामाणिक आधार दिये जानेके कारण विषय सुस्पष्ट तो होता ही है, साथ-साथ उसकी महत्ता एवं विवेचनकी प्रामाणिकता भी दृग्गोचर होती है। सन्देहका पूरा निराकरण हो जाता है। इस एक ग्रन्थके अभ्यासपूर्ण मनन एवं चिन्तनसे जैन दर्शनकी पूरी मौलिक जानकारी पाठकोंको सहजमें होती है, और पूर्वाचार्योंके अनेक विस्तृत दार्शनिक ग्रन्थोंका सारभूत निचोड़ भी सामने आता है, जिससे मन अत्यधिक प्रसन्नताका अनुभव करता है।

मान्यवर पण्डित फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री जैन सिद्धान्तके उच्चकोटिके दृष्टि सम्पन्न विद्वान् हैं। जैनाचार्योंके प्राचीनतम षट्खण्डागमका वर्षों तक उन्होंने अध्ययन-मनन करके उसका सुगम हिन्दीमें अनुवाद भी किया है। कसायपाहुड (जयधवला) तथा मूलाचारका भी अनुवाद कार्य उनके द्वारा सम्पन्न हो रहा है। ऐसे अनुभवी विद्वान्की पैनी लेखनीसे यह कृती बनी है, इसीसे उसकी महत्ता एवं प्रामाणिकता ख्यालमें आती है।

हमारे सामने पण्डितजीके इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थका दूसरा संस्करण है, जिसे उन्होंने ही अशोक प्रकाशन मंदिर, रवीन्द्रपुरी, वाराणसीसे वीरनिर्वाण संवत् २५०४ में प्रकाशित किया है। इसके "आत्मनिवेदन" में वे लिखते हैं "इसमें प्रथम संस्करणकी अपेक्षा विषयको विशदताको ध्यानमें रखकर पर्याप्त परिवर्धन किया गया है। साथ ही प्रथम संस्करणका बहुत कुछ अंश भी गर्भित कर लिया है। इसलिए इसे द्वितीय संस्करण या विषयके विस्तृत विवेचनकी दृष्टिसे दूसरा भाग भी कहा जा सकता है।

ग्रन्थके कुल बारह प्रकरण है, जिनके नाम इस प्रकार हैं।

१. विषय प्रवेश
२. वस्तुस्वभावमीमांसा
३. बाह्यकारण मीमांसा
४. निश्चय-उपादान मीमांसा
५. उभय निमित्त मीमांसा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६. कर्तृकर्ममीमांसा
७. षट् कारक मीमांसा
८. क्रम नियमित पर्याय मीमांसा
९. सम्यक् नियति स्वरूप मीमांसा
१०. निश्चय व्यवहार मीमांसा
११. अनेकान्त-स्याद्वाद मीमांसा
१२. केवलज्ञान-स्वभाव मीमांसा

इनमेंसे प्रत्येक प्रकरण अपनी-अपनी खास विशेषता रखता है, और उसे ध्यानपूर्वक आद्योपान्त पढ़नेसे जैन दर्शनके विविध मूल अंगोंका तलस्पर्शी ज्ञान होनेमें बहुत सहायता मिलती है। उनके सम्बन्धमें विद्वानोंमें भी जो गलत धारणाएं तथा वैसी प्ररूपणाएँ दृष्टिगोचर होती हैं, उन सबका शंका-समाधानके रूपमें सम्यक् प्रकारसे निरसन किया गया है। ऐसा एक भी विषय नहीं है जिसपर जिनागममें पर्याप्त प्रकाश न डाला गया हो। किन्तु उन सबका सुव्यवस्थित संकलन तथा उनपर पूर्वाचार्योंके वचनाधारसे किया गया संतुलित विवेचन पाठकों के सामने एकत्र आनेकी आवश्यकता थी, जो इस ग्रन्थसे पूरी हुई है।

पण्डितजी इस सम्बन्धमें स्वयं लिखते हैं इसमें हमारा अपना कुछ भी नहीं है। जिनागमसे जो विषय अवलोकनमें आए, उन्हें ही यहाँ ग्रन्थरूपी मालामें पिरोया गया है। वह भी इसलिए कि मोक्षमार्गमें तत्वस्पर्शके समय इन सब तथ्योंको हृदयंगम कर लेना आवश्यक है। अन्यथा स्वरूप-विपर्यास, कारण-विपर्यास तथा भेदा-भेद-विपर्यास बना ही रहता है, जिससे अनेक शास्त्रोंमें पारंगत होकर और प्रांजल वक्ता बन जानेपर भी इस जीवकी मोक्षमार्गमें गति होना संभव नहीं है।'

आगे वे लिखते हैं—"यह ग्रन्थ परमत-खण्डनकी दृष्टिसे संकलित नहीं किया गया है। इसमें जिन तथ्योंको संकलित किया गया है वे जैनतत्त्वमीमांसाके प्राणस्वरूप हैं, इसलिए परमतखण्डनमें जहाँ प्रायः व्यव-हारनयकी मुख्यता रहती है, वहाँ इसमें परमार्थप्ररूपणाको मुख्यता दी गई है, और साथ ही उसका व्यवहार भी दिखलाया गया है।

नियम है कि पूर्णरूपसे निश्चयस्वरूप होनेके पूर्वतक यथासम्भव निश्चय-व्यवहारकी युति युगपत् बनी रहती है। यहाँसे निश्चय मोक्षमार्गका प्रारम्भ होता है, वहाँसे प्रशस्त रागरूप व्यवहार मोक्षमार्गका भी प्रारंभ होता है। न कोई पहले होता है, न कोई पीछे। दोनों एक साथ प्रादुर्भुत होते हैं। इतना अवश्य है कि निश्चय स्वरूप मोक्षमार्गके उदयकालमें उसके प्रशस्त रागरूप व्यवहार मोक्षमार्गकी चरितार्थता लक्ष्यमें न आवे, इस रूपमें बनी रहती है। और जब यह जीव अरुचिपूर्वक हटे बिना व्यवहार मोक्षमार्गके अनुसार बाह्य क्रियाकांडमें प्रवृत्त होता है, तब इसके जीवनमें निश्चय मोक्षमार्गकी जागरुकता निरन्तर बनी रहती है। वह दृष्टिसे ओझल नहीं होने पाती। यह इसीसे स्पष्ट है कि निश्चय मोक्षमार्गका अनुसरण व्यवहार मोक्षमार्ग करता है। व्यवहार मोक्षमार्गका अनुसरण निश्चय मोक्षमार्ग नहीं करता। क्योंकि जैसे-जैसे निश्चय मोक्षमार्गसे जीवन पुष्ट होता जाता है, वैसे-वैसे व्यवहार मोक्षमार्ग निश्चय मोक्षमार्गका पीछा करना छोड़ता जाता है।"

इस ग्रन्थका प्रथम संस्करण १९६० में जब प्रकाशित हुआ, तब इसका सामूहिक स्वाध्याय परमपूज्य गुरुदेव १०८ श्री समन्तभद्र महाराज तथा विदुषी गजाबहनजीके साथ करनेका अवसर हमें प्राप्त हुआ था। तभीसे इस ग्रन्थकी मौलिकता एवं उपयोगिता विशेष रूपसे प्रतीत हुई थी। उसके बाद इस ग्रन्थके विराधमें आलोचनात्मक कुछ पुस्तकें प्रकाशित हुईं। लेकिन इस आलोचनामें निर्दोष तत्त्वमीमांसाके बजाय तत्त्वकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विडम्बना ही अधिकतर प्रतीत होती है, जिससे जैनदर्शनकी मूल भूमिकापर ही कुठाराघात किया गया हो। इसपर पण्डितजी लिखते हैं—"यह सब देखकर उनका चित्त करुणासे भर उठता है।" सच्चा जिनवाणीका सेवक इससे अधिक क्या लिखें ? विद्वान् लोग जिनागमका मुख रहते हैं। उन्हें चाहिए कि वे आगमके अनुसार समाजको सही मार्गदर्शन करे।

भगवान् अरिहंत देवने वीतराग धर्मका ही उपदेश दिया, जो आत्माका विशुद्ध रूप है। परमार्थस्वरूप शुद्धात्म प्राप्ति के लिए एक मात्र ज्ञानमार्गपर आरूढ़ होकर स्वभावसे शुद्ध त्रिकाली आत्माका अप्रमादभावसे अनुसरण करना यही उपाय है। उसकी प्रारम्भिक भूमिकामें ज्ञानधारा और कर्म (राग) धाराका समुच्चय भले ही बना रहे, किन्तु उसमें इतनी विशेषता है कि ज्ञानधारा स्वयं-निर्जरारूप है, इसलिए वही साक्षात् मोक्ष का उपाय है। कर्मधारा बंधस्वरूप होनेसे उसके द्वारा संसार-परिपाटी बने रहनेका ही मार्ग प्रशस्त होता है। परमार्थसे न तो वह मोक्षमार्ग है, नहीं उसके लक्ष्यसे साक्षात् मोक्षमार्गकी प्राप्ति होना ही सम्भव है।

जैनतत्वज्ञानी सम्बन्धी ऐसे सभी तथ्योंको आगमके आधारपर सुस्पष्ट करनेका प्रामाणिक प्रयत्न इस ग्रन्थमें लेखक द्वारा किया गया है।

आज विज्ञानकी प्रगतिसे मानव अधिक चिकित्सक एवं चिन्तनशील बन रहा है। जीवनके प्रत्येक अंग का बारीकीसे अभ्यास करनेकी प्रवृत्ति बुद्धिवादी लोगोंमें बढ़ रही है। हर एक बातकी कारणमीमांसा कुछ बुनियादी तत्वोंके आधारपर वे करना चाहते हैं। और तर्कसंगत विचारधारासे उनका जितना समाधान होता है, उतना अन्य विचारधारासे नहीं होता। उनके सामने पहला प्रश्न तो यह रहता है कि वर्तमानमें वह परतन्त्र क्यों है ? क्या अपनी स्वयंकी कमजोरीके कारण या परसत्ताके कारण अथवा कर्मकी सत्ता मानी जानेवाली हो तो उसकी बलवत्ताके कारण ?

इसके बाद इसीमेंसे दूसरा प्रश्न खड़ा होता है, कि वह इस परतन्त्रतासे मुक्त होकर स्वतन्त्र कब और कैसे बन सकेगा ? इन दोनों मूलभूत प्रश्नोंका मौलिक समाधान उसके अन्तर्गत नाना उपप्रश्न एवं उनके तर्क-संगत तथा आगमाधारित विस्तृत उत्तरोंके साथ इस ग्रन्थमें किया गया है। इससे सुबुद्ध पाठकोंकी अनेक भ्रान्त धारणाएँ दूर होकर जैन तत्त्वका सम्यक् रूप उनके सामने दर्पणवत् आता है, जिसे जानकर जिज्ञासुओंको विशेष संतोषका अनुभव होता है। इस ग्रन्थकी यही विशेषता है।

वस्तुका सम्यक् निर्णय करनेमें ऐसी शंका समाधानरूप शैलीका बहुत अच्छा उपयोग होता है यह पण्डितप्रवर टोडरमलजीके "मोक्षमार्ग प्रकाशक" ग्रन्थसे सिद्ध हुआ है। इस जैनतत्त्वमीमांसामें पण्डितजीने उन सब प्रमुख विषयोंका समावेश कर लिया है, जिनका चिंतन-मनन आजकी स्थितिमें अत्यावश्यक था, जिनके सम्बन्धमें अभ्यासु विद्वानोंकी दृष्टि भी अधिक स्पष्ट एवं निर्मल होनेकी आवश्यकता थी। यह ग्रन्थ इस आवश्यकताकी पूर्ति करनेमें बहुत सहायक प्रतीत होता है, और वह भी सरल तथा सुबोध भाषामें। पण्डितजीका यह उपकार जिज्ञासु एवं विद्वद्वर्ग कभी नहीं भूलेगा। सिद्धान्त तथा आगममें भी विद्वानोंके लिए तो वह नया वरदान रूप सिद्ध होगा, इसमें संदेह नहीं है। इस ग्रन्थका दूसरा संस्करण भी अब अप्राप्य हुआ है, इसीसे उसकी उपयोगिता एवं लोकप्रियता स्पष्ट होती है।

समाजके मान्यवर विद्वान् पण्डित जगन्मोहनलालजी इस पुस्तकके प्राक्कथनके अन्तके निचोड़ रूपसे सही लिखते हैं—'पण्डितजीके इस समयोपयोगी सांस्कृतिक एवं साहित्यिक सेवाकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। हमें विश्वास है कि समाज इससे उचित लाभ उठाकर अपनी ज्ञानवृद्धि करेगी।"

हमें तो लगता है कि ज्ञानवृद्धिके साथ शुद्धात्मबोध भी यह ग्रन्थ अभ्यासकोंको सहायक सिद्ध होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org